International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 8; August 2016; Page No. 382-383

योद्धा सन्यासी का सार्वभौम धर्म

डॉ० सरिता चौहान

सहायक प्रवक्ता, हिन्दी –विभाग एमसीएम डीएवी महिला महाविद्यालय सेक्टर–36ए, चण्डीगढ, पंजाब, भारत।

सारांश

विवेकानन्द मूलतः एक चिन्तक थे। उनका मूल क्षेत्र अध्यात्म था। वेदान्त को आधार बनाकर उन्होने केवल हिन्दू धर्म का ही नहीं वरन् सभी धर्मों का विश्लेषण किया है। विवेकानन्द ने धर्म को व्यापकतम् अर्थ में स्थापित करते हुए सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन किया। धर्म को विज्ञान के साथ जोड़कर दोनों को एक ही दिशा में अग्रसर बताया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि धर्म अथवा आध्यात्मिकता किसी प्रकार के पूजा–पाठ, दिखावे या कर्मकांड में निहित नहीं हैं, वरन् मनुष्य के देवत्व के विकास में है। धर्म और साम्प्रदायिकता नितान्त भिन्न हैं। विवेकानन्द का धर्म सम्पूर्ण विश्व को साथ लेकर चलने वाला एक ऐसा मानव धर्म है जो भेद भावों को त्याग कर मानव–मात्र के कल्याण पर बल देता है। उन्होने राजनीति में आध्यात्मिकता को शामिल करने की बात कही और इस प्रकार से राजनीति और प्रकारान्तर से विश्व का कल्याण किया। विवेकानन्द ने 'सार्वभौम धर्म' की एक ऐसी कसौटी हमें प्रदान की जिसके आधार पर हम अपने और समाज के धार्मिक होने की पड़ताल निस्संदेह कर सकते हैं।

मूलशब्द: सार्वभौम धर्म, कर्मकांड, सम्प्रदाय, साम्प्रदायिकता, धार्मिक, सनातन, अंधविश्वास, मानवधर्म।

1. प्रस्तावना

भारतीय चिन्तनधारा में स्वामी विवेकानन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं योगदान रहा है। हंसराज रहबर ने उन्हें ''योद्धा सन्यासी''[1] कहा है। विवेकानन्द मूलतः एक चिन्तक थे। उनका मूल क्षेत्र अध्यात्म था। विवेकानन्द के चिन्तन का मूलाधार धर्म है। वेदान्त को आधार बनाकर उन्होने केवल हिन्दू धर्म का ही नहीं वरन् सभी धर्मों का विश्लेषण किया है। ''विवेकानन्द ने धर्म को व्यापकतम् अर्थ में स्थापित करते हुए सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन किया। धर्म के क्षेत्र मे संकीर्णता, रूढ़िवादिता, संशयात्मकता, कट्टरता और पाखंड का कड़ा विरोध किया। पंडितों और पुरोहितों के झूठ को जनता के सामने रखा और धर्म के बारे में फैले भ्रम को दूर करने का प्रयास किया। धर्म को विज्ञान के साथ जोड़कर दोनों को एक ही दिशा में अग्रसर बताया। उन्होंने शेष धर्मों के साथ हिन्दू धर्म की तुलना करके यह सिद्ध कर दिया कि वेदान्त में सभी धर्मों का सार निहित है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि धर्म अथवा आध्यात्मिकता किसी प्रकार के पूजा–पाठ, दिखावे या कर्मकांड में निहित नहीं हैं, वरन् मनुष्य के देवत्व के विकास में है।''[2]

धर्म पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि धर्म व्यक्ति और समष्टि के बीच घटी एक अनूठी घटना है। धर्म पुरातन भी है और सनातन भी। श्रद्धा धर्म का प्राण है। वास्तव में जाने–अनजाने मनुष्य यह समझ गया कि वह बद्ध है और इसी बद्धता से मुक्ति पाने के लिए उसने धर्म का आश्रय लिया। संभवतः यही कारण है कि सभी धर्म मोक्ष अथवा मुक्ति पर विशेष बल देते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं। स्वामी विवेकानन्द क्योंकि मूलतः एक चिन्तक थे अतः उन्होने भारतीय धर्म एवं दर्शन की जटिलता को सरल एवं व्यावहारिक बनाकर उसे जनसामान्य तक पहुँचाया। धर्म और दर्शन को समाज–सेवा के साथ जोड़कर विवेकानन्द ने कर्मशीलता का जो संदेश दिया वह आज भी प्रांसगिक है।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के बाह्य रूप को इसका मूलाधार स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि धर्म का अर्थ उस ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति है जो सब मनुष्यों में पहले से विद्यमान है। धर्म के विषय में उनका विचार था कि ''सभी धर्मों में कोई एक सर्वव्यापी सत्य है तो मैं कहूँगा कि वह है ईश्वर को पाना। आदर्श और साधन भिन्न–भिन्न हो सकते हैं पर मौलिक तथ्य यही है।''[3] धर्म की परिभाषा के अंतर्गत वे ईश्वर सम्बन्धी सभी मतों– सगुण, निर्गुण, अनन्त इत्यादि को रखने के पक्ष में थे। धर्म की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं, ''धर्म का अर्थ है आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेना और तद्रूप हो जाना।''[4] विवेकानन्द का मानना था कि यद्यपि सभी धर्म एक ही हैं किन्तु विभिन्न कारणों से उनके बाह्य रूप में भिन्नता आ जाती है। इन्हीं कारणों से साधना में भी अनेकता आ जाती है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना व्यक्तिगत धर्म चुनने का अधिकार है। विवेकानन्द का सुझाव था कि सभी अपने धार्मिक विचारों का प्रचार तो करें किन्तु किसी दूसरे के धर्म की निन्दा अथवा प्रतिकार न करें। तार्किक विवाद, कोरी बहस तथा खोखले विश्वास को वह धर्म नहीं मानते।

विवेकानन्द का मानना है कि जहाँ धर्म ने एक ओर शांति और प्रेम का प्रसार किया है तो वहीं दूसरी और घृणा और विद्वेष की भी सृष्टि की है। वास्तव में इसके लिए धर्म नहीं साम्प्रदायिकता जिम्मेदार है धर्म की विवेचना करते समय विवेकानन्द ने धर्म और सम्प्रदाय में स्पष्ट अन्तर किया है। साम्प्रदायिकता आधुनिक युग की परिघटना है। धर्म और साम्प्रदायिकता परस्पर विरोधी हैं। साम्प्रदायिक व्यक्ति कभी धार्मिक नहीं होता और इसी प्रकार धार्मिक व्यक्ति कभी साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। धर्म कभी भी साम्प्रदायिकता को प्रश्रय नहीं देता। बहुत ही खेद एवं चिन्ता का विषय है कि ''धर्म से जुड़े प्रतीक और विश्वास साम्प्रदायिकता को आधार प्रदान करते हैं। साम्प्रदायिक शक्तियाँ बड़ी चालाकी से धर्म में व्याप्त संकीर्णता, अंधविश्वास, भाग्यवाद और अतार्किकता का लाभ उठाती हैं।''[5] धर्म और साम्प्रदायिकता नितान्त भिन्न हैं। ''धर्म में ईश्वर का, परलोक का, स्वर्ग–नरक का, पुनर्जन्म का, आत्मा–परमात्मा का विचार होता है। सच्चे धार्मिक का और धर्म का सारा ध्यान पारलौकिक आध्यात्मिक जगत से सम्बंधित होता है। धर्म में भौतिक जगत की कोई जगह नही होती जबकि इसके विपरीत साम्प्रदायिकता का अध्यात्म से कुछ लेना–देना नहीं है और साम्प्रदायिक लोग अपने भौतिक स्वार्थों जैसे राजनीति, सत्ता, व्यापार आदि की चिन्ता अधिक करते हैं।''[6] वास्तव में साम्प्रदायिकता हमेशा

इस बात पर जोर देती है कि दो अथवा विपरीत धर्मों के लोग इकट्ठा नहीं रह सकते। धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर को स्पष्ट करते हुए दार्शनिक ओशो को कहना है, ''धर्म जब मर जाता है तब सम्प्रदाय पैदा होता है। और जो सम्प्रदाय में बंधे रह जाते हैं, वे कभी धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते।''[7] दूसरे शब्दों में जिन्हें धर्म को जानना है और एक सार्वभौम धर्म की स्थापना करनी है उन्हें सम्प्रदायों से मुक्त होना होगा। इस विषय में विवेकानन्द का कहना है, ''मै धर्म और सम्प्रदाय में अन्तर मानता हूँ। धर्म समस्त प्रचलित सम्प्रदायों को यह मानकर स्वीकार करता है कि वे एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त एक ही प्रकार के प्रयास हैं। सम्प्रदाय कुछ विरोधी और संघर्षात्मक होता है।''[8] वास्तव में धर्म एक सतत संघर्ष है। यह कहीं बाहर से नहीं आता अपितु व्यक्ति के भीतर से ही उदित होता है। रोम्या रोलाँ ने भी धर्म का ऐसा ही अर्थ निकाला है। उनका मानना है कि ''विचार किस कोटि का है यह देखकर हम निर्णय कर सकते हैं कि वह धर्म–प्रसू है या नहीं । अगर यह विचार हर तरह की कठिनाई सहकर एकनिष्ठ लगन और हर तरह के बलिदान की तैयारी के साथ सत्य की खोज की तरफ निर्भयतापूर्वक ले जाता है तो मैं उसे धर्म ही कहूँगा क्योंकि धर्म के अंदर यह विश्वास शामिल है कि मानवीय पुरुषार्थ का ध्येय मौजूदा समाज के जीवन से ऊँचा, बल्कि सारे समाज के जीवन से भी ऊँचा है।''[9]

स्वामी विवेकानन्द प्रखर आत्मत्याग से ही धर्म की उत्पत्ति मानते हैं। वे धर्म का सम्बन्ध मनुष्य की आंतरिकता से जोड़ते हैं। उनका मानना है कि यदि कोई मनुष्य अपवित्र ह्रदय है तो वह कभी भी धर्म के सत्य को (जो कि वास्तविक सत्य है) प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि धर्म को मनुष्य के भीतर विकसित होने वाला मानने पर भी विवेकानन्द इसके बाह्य रूप की सर्वथा उपेक्षा नहीं करते। वे कहते हैं, ''मंदिर और गिरजा, पोथी और पूजा ये धर्म के केवल शिशुशाला मात्र हैं, जिनके द्वारा आध्यात्मिक शिशु पर्याप्त बलवान होता है, जिससे वह उच्चतर सीढ़ियों पर पैर रखने में समर्थ होता है। यदि उसकी इच्छा है कि उसकी धर्म में गति हो, तो यह पहली सीढ़ियाँ आवश्यक हैं।''[10] धर्म के बाह्य रूप में प्रतीक पूजा (देवताओं, पूर्वजों, महात्मा, संतों आदि की पूजा) के विषय में उनका स्पष्ट मानना था कि यह प्रतीक पूजा, मोक्ष या मुक्ति में सहायक नहीं है। धर्मान्धता और नास्तिकता को विवेकानन्द अच्छा नहीं मानते। उनका कहना है, ''नास्तिकता में कुछ अच्छाई है किन्तु धर्मान्ध तो केवल अपने क्षुद्र अह्म के लिए जीवित रहता है। धर्मान्धों का कोई धर्म नहीं होता।''[11]

विवेकानन्द ने सभी धर्मों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने संसार के सभी प्रमुख धर्मों की तुलना कर उनके गुण–दोषों की पड़ताल की। विवेकानन्द सभी प्रसिद्ध और प्रचलित धर्मों के तीन भाग मानते हैं– दार्शनिक, पौराणिक और आनुष्ठानिक, जिसे उन्होने कर्मकांड कहा है। वे कर्मकांड को कट्टरता और अंधविश्वास के साथ जोड़ते है और इसके दुष्परिणामों की चर्चा भी करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विवेकानन्द ने मूर्तिपूजा को सम्मान की दृष्टि से देखा है। उनका मानना है कि ''वह व्यभिचार की जननी नहीं है वरन् वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है।''[12] विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म पर विचार करते हुए इसे आधाररूप में स्वीकार किया है किन्तु हिन्दू धर्म शब्द का प्रयोग उन्होंने संकीर्ण अर्थ में नहीं किया है। इस धर्म के मूलभूत सिद्धांत की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं, ''हिन्दू धर्म का एक मूलभूत सिद्धांत यह है कि सभी मनुष्य भिन्न हैं और अनेकता में एकता है। मदिरासेवी के लिए भी कुछ मंत्र हैं और वेश्यागामी के लिए भी।''[13]

विवेकानन्द ने धर्म को विज्ञान के आलोक में भी देखा और जाँचा–परखा है। उनका मानना है कि, ''विज्ञान एकत्व की खोज के सिवा और कुछ नहीं है। ज्यों ही कोई विज्ञान पूर्ण एकता तक पहुँच जाऐगा, त्योंही उसकी प्रगति रुक जायेगी क्योंकि तब वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। उदाहरणार्थ, रसायनशास्त्र यदि एक बार उस एक मूल तत्त्व का पता लगा ले, जिससे और सब द्रव्य बन सकते हैं, तो फिर वह और आगे नहीं बढ़ सकेगा। भौतिकी जब उस एक मूल शक्ति का पता लगा लेगी, अन्य शक्तियाँ जिसकी अभिव्यक्ति हैं, तब वह वहीं रुक जाऐगी। वैसे ही, धर्मशास्त्र भी उस समय पूर्णता को प्राप्त कर लेगा, जब वह उसको खोज लेगा, जो इस मृत्यु के इहलोक में एकमात्र जीवन है, जो इस परिवर्तनशील जगत का शाश्वत आधार है, जो एकमात्र परमात्मा है।''[14] इस प्रकार धर्म और विज्ञान में अधिक अन्तर नहीं है। धर्म के कुछ अभावों की पूर्ति विज्ञान से होती है अतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

वास्तव में विवेकानन्द 'मानवधर्म' के समर्थक थे। वे ज़ोर देकर कहते हैं कि सभी अपना–अपना धार्मिक संदेश तो दें, परन्तु दूसरे धर्म की निन्दा न करें। विवेकानन्द ने धर्म को व्यापकतम् अर्थ में स्थापित करते हुए सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन किया। विवेकानन्द का धर्म सम्पूर्ण विश्व को साथ लेकर चलने वाला एक ऐसा मानव धर्म है जो भेद भावों को त्याग कर मानव–मात्र के कल्याण पर बल देता है। उन्होने राजनीति में आध्यात्मिकता को शामिल करने की बात कही और इस प्रकार से राजनीति और प्रकारान्तर से विश्व का कल्याण किया। ''विवेकानन्द ने धर्म के मानवतावादी स्वरूप को पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ रूप में स्थापित किया। उन्होने धर्म को जिस धरातल पर रखकर व्याख्यायित किया उसमें विश्व के सभी मनुष्य समा सकते हैं।''[15]

विषय का समाहार करते हुए यह कहा जा सकता है कि विवेकानन्द ने 'सार्वभौम धर्म' की एक ऐसी कसौटी हमें प्रदान की जिसके आधार पर हम अपने और समाज के धार्मिक होने की पड़ताल निस्संदेह कर सकते हैं।

2. संदर्भ सूची

1. युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द, डॉ० राजेन्द्र टोकी, इन्द्रप्रस्थ इंटरनेशनल प्रकाशन, दिल्ली–110051, प्रथम संस्करण–2009, पृष्ठ–159, वही, पृष्ठ–158।
2. विवेकानन्द साहित्य (भाग–2), स्वामी विवेकानन्द, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रथम रियायती संस्करण–1989, पृष्ठ–234, वही, पृष्ठ–248।
3. महात्मा गाँधीः धर्म और सम्प्रदायिकता, सुभाष चन्द्र, हरिगंधा (मासिक पत्रिका) अक्तूबर, 2007, अंक–158 प्रकाशक–हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृष्ठ–29, वही, पृष्ठ–29।
4. कस्तूरी कुंडल बसै, ओशो, प्रकाशक–ओशो मीडिया इंटरनेशनल, पूना, संस्करण–2014, पृष्ठ–107
5. विवेकानन्द साहित्य (भाग–8), स्वामी विवेकानन्द, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, प्रथम रियायती संस्करण–1989, पृष्ठ–293
6. शांतिदूतः पं० जवाहर लाल नेहरू, डॉ० नरेशगुप्त 'मिलन', कीन बुक्स प्रकाशन, अनारकली, दिल्ली–110051, प्रथम संस्करण–2008, पृष्ठ–148
7. विवेकानन्द साहित्य (भाग–3), पृष्ठ–248
8. वही, (भाग–10), पृष्ठ–260
9. वही, (भाग–1), पृष्ठ–19
10. वही, (भाग–1), पृष्ठ–10
11. वही, (भाग–1), पृष्ठ–16
12. युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द, डॉ० राजेन्द्र टोकी, पृष्ठ–157